International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.10 No.4 Mar – Apr 2023

संस्कृत में न्याय का क्या अर्थ हैं ? और उसकी व्युत्पत्ती क्या हैं ? एवं संस्कृत में मुझे जो न्याय अच्छे लगे उनका विवरण ।

Maske Mahesh Zumbar
Acharya Institute Of Sanskrit And Yoga ,Savantvadi, Sindhudurg. Kavikulguru Kalidas University, Nagpur
Corresponding Author - **Maske Mahesh Zumbar**
Email- maskemahesh8485@gmail.com
DOI- 10.5281/zenodo.7794499

सार : संस्कृत में 'न्याय' शब्द का उपयोग कई अर्थों में होता है। संस्कृत व्याकरणशास्त्र की व्युत्पत्ति प्रक्रिया के अनुसार उसका अर्थ किया जाय तो 'नीयते प्राप्यते अनेन सः न्यायः।' अर्थात् जिसके द्वारा विशेष वस्तु या स्थिति प्राप्त की जाती है, वह न्याय है। संस्कृत में न्याय (नियन्ति अनेन ; नि + इ + घं) का एक अर्थ समानता, सादृश्य, लोकरूढ नीतिवाक्य, उपयुक्त दृष्टान्त, निर्देशना आदि होता है। अर्थात् कोई विलक्षण घटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो, 'न्याय' कहलाती है। ऐसे दृष्टान्त वाक्यों (या कहावतों) का व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है। लोकन्याय का अर्थ है, समाज में प्रचलित और सुप्रसिद्ध उदाहरणों को एक नाम दे देना और उचित स्थान पर उस नाम का उपयोग करके कम शब्दों में बड़ी बात कह देना। लोकरूढ नीतिवाक्यों के प्रयोग से कम शब्दों में और तर्कसम्मत ढंग से विचार व्यक्त करने में सुविधा होती है। संस्कृत में इनका प्रयोग व्याकरण और आयुर्वेद ग्रन्थों में हुआ है। शास्त्रों में जटिल बातों को सरल तरीके से कहने की अन्य युक्तियाँ भी हैं, जैसे- तन्त्रयुक्ति, ताच्छील्य, अर्थाश्रय, कल्पना, वादमार्ग आदि। न्याय दो प्रकार के होते हैं - लौकिकन्याय तथा शास्त्रीयन्याय।

संस्कृत में लौकिक न्याय की सूक्तियों के भी अनेक संग्रह-ग्रन्थ हैं। इनमें भुवनेश की लैकिकन्यायसाहस्री के अलावा लौकिक न्यायसंग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश, लौकिकन्यायरत्नाकर आदि हैं। लौकिक न्याय संग्रह नामक ग्रंथ के कर्त्ता रघुनाथ हैं। इसमें ३६४ न्यायों की सूची हैं।

संस्कृत शब्दकोश शास्त्र के अनुसार सोचें तो यह न्याय शब्द अलग-अलग प्रसंगों में रीति – पद्धति, धारा, औचित्य, फैसला वगैरह अर्थ में उपयोग किया जाता है। संस्कृत साहित्य में न्याय नामक एक स्वतंत्र शास्त्र भी है। (इस शास्त्र को तर्कशास्त्र या आन्वीक्षिकी विद्या भी कहते हैं।) यह शास्त्र 'प्रमाणेः अर्थपरीक्षणं न्यायः।' अर्थात् प्रत्यक्ष वगैरह प्रमाणों द्वारा अर्थ की परीक्षा करने की प्रक्रिया को कहते हैं। इस तरह, न्याय शब्द कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

यहाँ न्याय शब्द का उपयोग जिस अर्थ में किया जा रहा है, वह एक विशेष अर्थ में है। यह अर्थ कुछ इस तरह है। अपनी बात को संक्षेप में फिर भी खूब सटीक ढंग से प्रस्तुत करने के आशय से लोक या शास्त्र में प्रसिद्ध ऐसे जो दृष्टांत प्रयोग किए जाते हैं, वे (दृष्टांत) 'न्याय' हैं – 'लोकशास्त्रप्रसिद्धदृष्टान्तविशेषः न्यायः।'

जैसे कि, एक पात्र में दूध है और दूसरे पात्र में पानी है। कोई एक व्यक्ति तीसरे पात्र में इन दोनों को मिला देता है। अब, इस तीसरे पात्र में एकत्रित दूध और पानी को पुनः अलग करना कठिन कार्य है। इस कठिन कार्य को हंस नामक पक्षी कर सकता है, उसे प्रकृति ने ऐसी शक्ति दी है। अतः दूध और पानी को अलग करने के लिए लोक (संसार) में हंस प्रसिद्ध है। इसी आधार पर लोक में 'नीरक्षीरविवेक' ऐसा एक न्याय प्रसिद्ध हुआ है। जब लोक व्यवहार में किसी अच्छे-बुरे के भेद को परखने की बात हो या एक-दूसरे में मिश्रित सत्य-असत्य जानकारी को अलग करने की बात हो, तब वहाँ दृष्टांत देने के लिए इस नीरक्षीरविवेक न्याय का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, किसी व्यापारी और ग्राहक के बीच विवाद हुआ और उसकी शिकायत की गई। दोनों अपनी बात को सही बताते हुए एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। कौन सही है और कौन गलत, इसका निर्णय करना कठिन है। इसके निर्णय के लिए दोनों न्यायालय जाते हैं। वहाँ विद्वान न्यायाधीश के समक्ष दोनों के बीच की न्यायिक प्रक्रिया चलती है। इसके पश्चात् प्रमाण और दोनों पक्षों के तर्कों के आधार पर न्यायाधीश अपना निर्णय सुनाता है कि ग्राहक झूठा है और व्यापारी की बात सही है।

न्यायाधीश के इस निर्णय के विषय में संक्षेप में फिर भी खूब सटीक रूप से अपना अभिप्राय देने के लिए नीरक्षीरविवेक न्याय न्यायाधीश के इस निर्णय के विषय में संक्षेप में फिर भी खूब सटीक रूप से अपना अभिप्राय देने के लिए नीरक्षीरविवेक न्याय प्रयोग किया जा सकता है। जैसे कि "न्यायाधीश ने नीरक्षीरविवेक न्याय के तहत कार्य किया। परिणामस्वरूप सही और गलत का निर्णय हो गया। ग्राहक दोषी और व्यापारी निर्दोष सिद्ध हुआ और मुक्त हो गया।" इस तरह यहाँ इस न्याय का उपयोग करके न्यायाधीश की बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यवाही को संक्षेप में सटीक तथा अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है।

भाषिक व्यवहार में इस तरह न्याय वाक्यों का प्रयोग करने से दो लाभ हो सकता है। एक तो आपके संभाषण में सौन्दर्य आता है, दूसरे इन न्याय वाक्यों में निहित तथ्य को समझ करके मनुष्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रेरणा और मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकता है। यह प्रेरणा और मार्गदर्शन मनुष्य का उत्कर्ष सिद्ध कर सकता है। यहाँ उपर्युक्त न्यायवाक्य के प्रयोग का संदर्भ मन में रखकर थोड़ा विचार करेंगे।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में नित्य नए-नए व्यक्तियों के साथ काम करने का प्रसंग आता है। ये सभी व्यक्ति एकसमान नहीं होते हैं। दूध और पानी की तरह ही कभी-कभी इन व्यक्तियों में भी सज्जन-दुर्जन का मिश्रण हो सकता है। इस स्थिति में नीरक्षीरविवेक न्याय हमारा जिस तरह मार्गदर्शन करता है, उसी तरह सबसे पहले सज्जन और दुर्जन का भेद परखना रहता है। एक बार इस प्रकार का भेद पता चलने के पश्चात् सज्जन के साथ सहयोग तथा दुर्जन के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए, ऐसा उपयोगी मार्गदर्शन यहाँ से हमें प्राप्त होता है।

संस्कृत में ऐसे कई न्याय प्रचलित हैं। उनमें से यहाँ मनपसंद के मात्र दस न्याय का परिचय प्राप्त करेंगे :

(1) सिंहावलोकनन्याय: – 'सिंह' शब्द एक प्राणी का वाचक है। 'अवलोकन' अर्थात् देखा। जंगल का राजा माना जानेवाला थोड़ी-थोड़ी देर पर पीछे मुड़कर देखता रहता है। सिंह की इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए इस न्याय की परिकल्पना की गई है।

इस पर से यह बोध प्राप्त होता है कि मनुष्य को भले ही आगे की ओर चलना होता है, परन्तु कभी-कभी पीछे मुड़कर भी देखना चाहिए। एक विद्यार्थी के रूप में भले ही आपको अगली कक्षा में जाना है, और इसलिए आपकी दृष्टि अगली कक्षा पर हो, यह स्वाभाविक है। फिर भी आगे बढ़ने की इस प्रक्रिया में कभी-कभी पीछे मुड़कर देख लेना आवश्यक है। यदि आप ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ते हों तो कभी-कभी दसवीं कक्षा में सीखी बातों की तरफ नज़र डाल देनी चाहिए।

(2) पङ्कप्रक्षालनन्याय: – 'पङ्क' अर्थात् कीचड़ और 'प्रक्षालन' अर्थात् धोने की क्रिया। कीचड़ को धोने की क्रिया को 'पङ्कप्रक्षालन' कहते हैं। कीचड़ में पैर पड़ जाय और पैर गंदा हो जाय, तो कई विशेष परेशानी नहीं होती है क्योंकि कीचड़ से गंदे पैर को स्वच्छ पानी से धो सकते हैं। इसतरह कीचड़ को धोने की व्यवस्था उपलब्ध है, फिर भी कीचड़ से पैर गंदे ही न हों, ऐसी सावधानी रखी जाय तो कीचड़ को धोने की प्रक्रिया नहीं करनी पड़ेगी। इस तथ्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत न्याय की परिकल्पना की गई है।

यह न्याय कदम-कदम पर सीन देनेवाला है। वर्षाऋतु में इधर-उधर भरे पानी में मच्छर पैदा होते हैं और उनके बढ़ने से बीमारियाँ आती हैं। सामान्य रूप से लोग ऐसा सोचते हैं कि मच्छरों से बचने के लिए तरह-तरह के साधन उपलब्ध हैं और बीमार होंगे तो अस्पताल में चिकित्सा उपलब्ध है। परिणामस्वरूप मच्छरों से होनेवाली परेशानी का निवारण कर लेंगे। इसमें चिंता करने की क्या आवश्यकता है। परन्तु ऐसे विचार के सामने यह न्याय उपदेश देकर समझाता है कि वर्षाऋतु में इधर-उधर पानी न भरे, मच्छरों की उत्पत्ति न हो और मच्छरों के कारण बीमारी न फैले, उसका पहले से ही ध्यान रखना चाहिए। यदि इस तरह किया जाय तो आनेवाली परेशानी के निवारण के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा, रूपये का अपव्यय नहीं होगा तथा बीमारी के कारण उपद्रव नहीं बढ़े, उसके लिए हमें पहले से ही सावधान रहना चाहिए।

यदि किसी व्यक्ति के पास परेशानी के निराकरण का उपाय उपलब्ध है, ऐसा मानकर पहले तो परेशानी पैदा करता है, उसके बाद निराकरण के लिए समय और शक्ति खर्च करता है तथा कष्ट उठाता है, ऐसे मनुष्य के व्यवहार को सचोट रूप से व्यक्त करने के लिए सामान्य व्यवहार में इस न्यायवचन का प्रयोग किया जा सकता है।

(3) वृद्धकुमारीवाक्यन्याय: – 'वृद्धकुमारी' वृद्ध ऐसी कुमारी, 'वाक्य' अर्थात् वचन। वृद्धावस्था को प्राप्त कोई एक कुमारी के वचन पर से यह न्याय प्रचलित हुआ है। एक कथा है – वृद्धावस्था में पहुँची एक कुमारिका को मात्र एक ही वरदान माँगने के लिए कहा जाता है। वह सोचकर वरदान माँगती है कि – पुत्रा में बहुक्षीरघृतमोदनं काञ्चनपात्रे मुज्जीरन्। अर्थात् मेरे पुत्र सोने के बर्तन में घी और दूध से युक्त भात खाएँ। इस तरह, एक ही वचन में वृद्ध कुमारी ने अपने लिए पति और पुत्र को तो माँग ही लिया, उसके साथ घी, दूध, अन्न वगैरह खाद्य पदार्थ तथा सुवर्णादि जैसे सभी धन माँग लिए। वृद्धकुमारी के वचन पर से इस न्याय की परिकल्पना की गई है।

मानवजीवन के भिन्न-भिन्न अनेक संदर्भो में इस न्याय से प्रेरणा और उपदेश मिल सकता है। यहाँ भोजन के संदर्भ में इस न्याय से मिलता-जुलता उपदेश सोचेंगे। हम जानते हैं कि शरीर के लिए अनेक प्रकार के विटामिन, खनिज, प्रोटीन

वगैरह तत्त्व अपेक्षित हैं। वे सभी उचित प्रमाण में प्राप्त हों, इसके लिए भिन्न-भिन्न साग-सब्जी और अनाज खाने होते हैं। परन्तु यदि कभी एक ही वस्तु खा करके सबकी प्राप्ति कर लेनी हो, तो मनुष्य को गाय का दूध पीने जैसा है। वृद्धकुमारी के इस वचन की तरह ही एकमात्र गाय के दूध के भोजन से सभी आवश्यक तत्त्वों की प्राप्ति हो जाती है।

इस तरह, जब कोई व्यक्ति एक ही उपक्रम से कई की प्राप्ति करता हो, तब उस व्यक्ति की उपलब्धि को महत्त्व देने के लिए इस न्यायवाक्य का प्रयोग किया जा सकता है।

(4) शुण्डासूचिन्याय: – 'शुण्डा' अर्थात् सैंड और 'सूचि' अर्थात् सूई। सूंड स्थूल है और सूई सूक्ष्म है। धूल में खो गई सूक्ष्म सूई को खोजने के लिए कोई स्थूल ऐसी हाथी के सूंड का उपयोग करे, तो मनुष्य का यह व्यवहार हँसी का पात्र बनता है। इसी पर से यह न्याय प्रचलित हुआ है।

इस न्याय से हमें जो प्रेरणा मिलती है, उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यहाँ वैद्यकीय क्षेत्र की एक बात करेंगे। मानो कि कोई एक रोगी है। उसे सामान्य रोग हुआ है। उस रोग की दवा भी आसानी से उपलब्ध है और सामान्य दवा से रोग मिट सकता है। इसके बाद भी कोई वैद्य बड़े ऑपरेशन (शल्यक्रिया) की बात करे, तो वह वैद्यकीय जानकारों के बीच हँसी का पात्र बन जाता है। इस तरह जब कोई किसी छोटे से काम को करने के लिए बड़े साधन का उपयोग करे और फिर भी कार्यसिद्ध न हो, तब उस व्यक्ति की मूर्खता को सचोट शब्दों में प्रस्तुत करने के लिए इस न्यायवचन का अपने वक्तव्य में प्रयोग किया जा सकता है।

(5) सूचिकटाहन्याय: – 'सूचि' अर्थात् सूई और 'कटाह' अर्थात् कढ़ाही। किसी कारीगर को सूई और कढ़ाही दोनों बनाने का कार्य मिला हो, तो स्वाभाविक है कि वह सरल और छोटी होने से कारीगर सूई को पहले बना देगा और उसके बाद कढ़ाही बनाएगा। अनेक कारीगरों के इस प्रकार के अनुभवों को ध्यान में रख करके यह न्याय प्रचलित हुआ है। परीक्षा दरम्यान परीक्षार्थी के हाथ में जब प्रश्नपत्र आ जाता है, तब सर्वप्रथम प्रश्नपत्र पढ़ना होता है। उसके बाद उत्तरपुस्तिका में उसके उत्तर लिखने होते हैं। इस समय स्वभाविक ढंग से परीक्षार्थी उत्तरपुस्तिका में सबसे पहले सरल-सरल और छोटे-छोटे प्रश्नों के उत्तर लिन देता है और कठिन एवं बड़े प्रश्नों के उत्तर दूसरे क्रम में लिखता है। परीक्षार्थी को इस तरह का व्यवहार करने के लिए प्रेरणा यह न्याय देता है।

जब कोई व्यक्ति सरल कार्य को पहले कर लेता हो और कठिन कार्य को दूसरे क्रम पर करने का आयोजन करता हो, तब उस व्यक्ति के ऐसे व्यवहार को कहने के लिए इस न्याय का प्रयोग किया जा सकता है।

(6) जलबिन्दुनिपातन्याय: – 'जल' अर्थात् पानी, 'बिन्दु' अर्थात् बूंद, 'निपात' अर्थात् गिरना। घड़े जैसे पात्र में भरे पानी के भंडार में से (घड़े में हुए छिद्र में से) छोटे-छोटे बूंदों के रूप में पानी के बह जाने की क्रिया के कारण खाली हुए घड़े को देखकर किसी ने इस न्याय की कल्पना की होगी।

माता-पिता की प्रचुर संपत्ति को देखकर कोई लड़का ऐसा समझता है कि 'मैं चाहे जितना खर्च करूँ मेरे पिता की संपत्ति कहाँ कम होनेवाली है।' ऐसा सोचकर वह पिता की संपत्ति का उपयोग खूले हाथ करने लगे और उसमें कोई वृद्धि न करे, तो कभी न कभी वह प्रचुर संपत्ति भी समाप्त हो जाती है। इसी तरह, प्रकृतिदत्त खनिज भंडार को देखकर मनुष्य किसी भी प्रकार का संयम किए बिना उसका उपयोग करता रहे तो वह खनिज संपत्ति भी कम हो जानेवाली है। प्रस्तुत न्याय इस वास्तविकता का दर्शन करवाकर उपदेश देता है कि जिस तरह भरे घड़े में से पानी बूंद-बूंद करके बह जाता है, तो एक समय वह खाली हो जाता है। अतः खर्च हो रहे पदार्थ के भंडार में वृद्धि करते रहना है अथवा संग्रह का निपात न हो, (पानी गिरे नहीं) ऐसी व्यवस्था करके रखनी है। किसी वस्तु के बड़े भंडार को देखकर कोई खुले हाथ से उपयोग करने लग जाय तो उस व्यक्ति के इस व्यवहार को अभिव्यक्त करने के लिए अपने वक्तव्य में इस न्याय का उपयोग किया जा सकता है।

(7) देहलीदीपकन्यायः – 'देहली' अर्थात दहलीज, 'दीपक' अर्थात दीया। दीपक का कार्य प्रकाश फैलाना है। उसे घर के किसी भी कमरे में रखा जाय तो वह मात्र उसी कमरे में ही प्रकाश फैला सकता है, परन्तु यदि उसे घर की दहलीज पर रखा जाए तो वह देहली के दोनों ओर अर्थात् घर के अंदर और बाहर प्रकाश फैला सकता है। इस तरह, एक जगह रहकर दो जगह कार्य करने के साधनों के संदर्भ में यह 'देहलीदीपक' न्याय प्रचलित हुआ है। यह न्याय हमें पदार्थों के उपयोग की रीति सिखाता है। मनुष्य चाहे तो किसी पदार्थ से सीमित लाभ ले सकता है और ... मनुष्य चाहे तो असीमित लाभ भी ले सकता है। इसके लिए कभी पदार्थ के प्रयोग का स्थान और कभी पदार्थ के प्रयोग की रीति महत्त्वपूर्ण बन जाती है। जैसे कि, कोई विद्यार्थी विद्यालय में आने के लिए साइकिल का उपयोग करता है। भोजन के बाद कुछ समय बीत जाने पर या बाद में भोजन किए बिना खाली पेट रहकर विद्यार्थी द्वारा होनेवाले साइकिल के उपयोग से एक तरफ समय की बचत होती है, तो दूसरी तरफ शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। इसतरह, विद्यार्थी साइकिल के उपयोग से एक साथ दो लाभ ले सकता है।

विद्यार्थी द्वारा लिए जा रहे साइकिल के इस द्विविध लाभ को कहने के संदर्भ में इस न्याय का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह जब भी किसी एक व्यक्ति या वस्तु द्वारा एक साथ दो प्रयोजन सिद्ध किए जा रहे हों, तब उस प्रसंग को संक्षेप में सचोट रूप से व्यक्त करने के लिए इस न्याय वाक्य का प्रयोग किया जा सकता है।

(8) मात्स्यन्याय: – 'मत्स्य' अर्थात् मछली। 'मत्स्य' नाम के ऊपर से 'मात्स्य' शब्द बना है। 'मत्स्य' से संबंधित वस्तु या बात को 'मात्स्य' कहते हैं। नदी या समुद्र में रहनेवाली बड़ी मछली अपने से छोटी मछली को खाकर अपना अस्तित्व बनाए रखती है, जीवित रहती है। मछली के इस व्यवहार के आधार पर मात्स्यन्याय प्रचलित हुआ है।

इस न्याय पर से मनुष्य को यह बात समझनी है कि जिस तरह समुद्र में मछलियों का सहअस्तित्व है उसी तरह मानवसमाज में मानव-मानव का सह अस्तित्व है। मछलियों के सहअस्तित्व में जिस तरह छोटे को बड़े से सतत भय रहता है और अपने आपको बचाना रहता है, उसी तरह मानव समाज में भी छोटे व्यक्ति को बड़े व्यक्ति से सतत भय बना रहता है और स्वयं को बचाए रखना होता है। (जब कि मानवसमाज में ऐसा हमेशा नहीं होता है, उसके लिए राजतंत्र या प्रजातंत्र की स्थापना हुई है। परिणामस्वरूप मानव समाज में शक्तिसंपन्न लोगों के बीच भी शक्तिहीन लोगों का अस्तित्व बना रहता है।)

बातचीत दरम्यान कोई ऐसा संदर्भ बने कि कोई बलवान व्यक्ति निर्बल को पीड़ा पहुँचा रहा हो या उसकी निर्बलता का लाभ ले करके अपना साम्राज्य या अस्तित्व बनाए रखने की चेष्ठा कर रहा हो, तो इस संदर्भ में उस व्यक्ति के अमानवीय व्यवहार को सटीक ढंग से व्यक्त करने के लिए यह 'मात्स्यन्याय' उपयोग किया जा सकता है।

(9) पिष्टपेषणन्याय: – 'पिष्ट' अर्थात् पिसी हुई कोई वस्तु और 'पेषण' अर्थात् पीसना। पिष्ट अर्थात् पिसी हुई वस्तु (आटा) को पेषण अर्थात् (पुनः की जानेवाली) पीसने की क्रिया को पिष्टपेषण कहते हैं। सामान्य रूप से कोई वस्तु पिष्ट – पिसी हुई हो, तो उसे पीसने की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी कोई उस पिसी हुई वस्तु को पीसने का अनावश्यक प्रयत्न करे तो वह मात्र समय और शक्ति को बर्बाद करता है। इस वास्तविकता का उपदेश करने के लिए यह न्याय प्रचलित हुआ है।

दो प्रकार के कार्य की कल्पना की जा सकती है। एक तो हो गया कार्य और दूसरा न हुआ कार्य। यह न्याय सीख देता है कि मनुष्य को इन दो प्रकार के कार्यों में से हो गए कार्य को फिर से करके अपने समय और शक्ति की बर्बादी नहीं करनी चाहिए, बल्कि न हुए कार्य को करने का उपक्रम करके अपने समय और शक्ति का सदुपयोग करना चाहिए। जैसे, घर या विद्यालय को किसी ने पहले से ही स्वच्छ कर दिया हो, तो उसे पुनः साफ करने के लिए समय और शक्ति खर्च नहीं करनी चाहिए। उसके बदले जो स्थल अस्वच्छ हो, उसे स्वच्छ करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बाद भी कई बार ऐसा होता है कि प्रसिद्धि या दिखावे के लिए स्वच्छ स्थान को फिर से स्वच्छ करने का उपक्रम किया जाता है। यह तो समय और शक्ति की बर्बादी है। – इस प्रकार की समय और शक्ति की बर्बादी को संभाषण दरम्यान सटीक रूप से व्यक्त करने के लिए इस न्यायवाक्य का उपयोग किया जा सकता है।

(10) कूपमण्डूकन्याय: – 'कूप' अर्थात् कुआँ, 'मण्डूक' अर्थात् मेढ़क। कुआँ मेढ़क का जन्मस्थान और निवासस्थान है। कुएँ में जन्म लेकर कुएँ में रहनेवाला मेढ़क उसी में इधर से उधर घूमता रहता है। लेकिन उसे कुएँ के अलावा अन्यत्र कहीं जाने का अवसर नहीं मिलता है। अपने निवासस्थान के अतिरिक्त उसने और कोई भी जगह नहीं देखी, और न ही दिखाई देती है। परिणामस्वरूप वह कुएँ को ही संपूर्ण जगत समझता है। कुएँ के बाहर स्थित अतिविशाल जगत से उसका नाममात्र भी परिचय नहीं हो पाता है। कुएँ में रहनेवाले इस मेंढ़क की स्थिति पर से ही यह न्याय प्रचलित हुआ है।

मानवमात्र किसी एक छोटे स्थल में जन्म लेता है और अधिकांशत: वह किसी एक छोटे स्थान में ही निवास करता है। ज्यादातर मनुष्य का जीवन अपने जन्म और निवास स्थल में ही व्यतीत होता है। यह जरूरी नहीं है कि सभी लोगों को देश-विदेश को प्रत्यक्ष रूप से देखने का अवसर ही मिले, परंतु यदि मनुष्य चाहे तो शिक्षा प्राप्त करके इस शिक्षा के माध्यम से जगतभर का परिचय प्राप्त कर सकता है। फिर भी मनुष्य को जगत की विशालता का और इस विशाल जगत के सामने अपनी स्थिति का एहसास होता है। यह एहसास मनुष्य के मन को और हृदय को विशाल बनाता है। मन परोपकारी बन जाता है। इस तरह विशाल जगत का परिचय मनुष्य का कई तरह से उत्कर्ष करता है। परन्तु जो व्यक्ति शिक्षा न प्राप्त करके या यात्रा न करके मात्र अपने निवासस्थान रूपी छोटे से हिस्से में रहकर जीवन जीता है, उसे विशाल जगत का कोई ख्याल ही नहीं आता है। उसके लिए तो अपना गाँव या शहर ही समग्र जगत बन जाता है। ऐसे व्यक्ति की विचारधारा भी सीमित ही होती है। यह सीमित विचारधारा मनुष्य के मन और हृदय को भी संकुचित कर देती है।

जिसने मात्र अपना गाँव ही देखा हो और अपने गाँव को ही जगत मान लिया हो, उस व्यक्ति का व्यवहार और विचार दोनों संकुचित बन जाते हैं। अपने अत्यंत सीमित ज्ञान को संपूर्ण माननेवाले मनुष्य को ऐसे संकुचित व्यवहार को दर्शाने के लिए इस न्याय का उपयोग किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. संस्कृत व्याकरण न्याय परिचय
2. महाभारत
3. लौकिकन्यायसंग्रह